



International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519

IJSR 2023; 9(1): 159-163

© 2023 IJSR

www.anantaajournal.com

Received: 20-11-2022

Accepted: 22-12-2022

Saurabh Kumar

PhD Research Scholar,

Department of Sanskrit,

University of Delhi, Delhi, India

महाभारत के आश्वमेधिक पर्व में वर्णित यज्ञ एवं उनका महत्त्व

Saurabh Kumar

प्रस्तावना

महाभारत के समस्त पर्वों में आश्वमेधिक पर्व का विशेष महत्त्व है। आदिपर्व में महाभारत के विषय क्रम को बतलाते हुए प्रत्येक पर्व की विशेषताओं का वर्णन भी किया गया है जिसमें आश्वमेधिक पर्व को समस्त पापों का विनाशक बताया गया है।¹ आश्वमेधिक पर्व के अन्तर्गत तीन उपपर्व हैं :- अश्वमेध पर्व, अनुगीता पर्व और वैष्णवधर्म पर्व। जिसमें अनुगीता को **अध्यात्म का वाचक** कहकर उसकी दार्शनिकता को प्रतिपादित किया गया है।²

पितामह भीष्म की मृत्योत्तरवर्ती घटनाओं का वर्णन आश्वमेधिक पर्व की पृष्ठभूमि है। यद्यपि महाभारत की मूलकथा तो कौरव-पाण्डवों के युद्ध के पश्चात् ही समाप्त हो जाती है जिसमें पाण्डव विजयी होते हैं। परन्तु ग्रन्थकार ने अपना लेखनकार्य इसलिए जारी रखा क्योंकि महाभारत के युद्धोपरान्त युधिष्ठिर एवं अर्जुन के समक्ष वह दृश्य उपस्थित हो गया था जिसकी कल्पना अर्जुन ने युद्ध से पूर्व ही कर ली थी। उसने युद्ध प्रारम्भ होने से पूर्व ही दोनों सेनाओं के मध्य श्रीकृष्ण के समक्ष शस्त्र त्यागकर युद्ध न करने की स्पष्ट घोषणा इस प्रकार की थी कि “इन महानुभाव गुरुजनों को न मारकर इस लोक में भिक्षा का अन्न खाना भी मैं श्रेष्ठ समझता हूँ, क्योंकि गुरुजनों को मारकर यहाँ रक्त से सते हुए तथा धन की कामना की मुख्यता वाले भोगों को ही तो भोगूँगा।”³ युद्ध के पश्चात् युधिष्ठिर की भी अर्जुन के समान ही दशा थी। इस निराशापूर्ण वातावरण में से युधिष्ठिरादि पाण्डवों को निकालना कवि का प्रथम लक्ष्य रहा है जिसका चित्रण प्रस्तुत पर्व के प्रारम्भ में ही युधिष्ठिर की शोकाकुल अवस्था के माध्यम से वर्णित किया गया है।⁴ अतः इस निराशामय वातावरण को आशान्वित कराना ही आश्वमेधिक पर्व की रचना का प्रथम एवं मुख्य कारण प्रतीत होता है।

इसी उद्देश्य की प्राप्ति हेतु व्यास जी युधिष्ठिर को अनेक प्रकार की बुद्धिमत्तापूर्ण एवं तर्कपूर्ण सान्त्वनाएँ देते हैं।⁵ तत्पश्चात् अर्जुन को श्रीकृष्ण द्वारा दिए गए दार्शनिक उपदेशों के माध्यम से भीष्म, द्रोणादि के मृत्युजनित करुणरस को शान्तरस में परिवर्तित करने का सफल प्रयास किया गया है। अश्वमेध यज्ञ की प्रेरणा देना भी उक्त उद्देश्य की पूर्ति हेतु अनिवार्य था, क्योंकि अनेक महान् राजाओं ने भी

प्रायश्चित्त के रूप में इसे स्वीकार किया है।⁶ प्रायश्चित्त करने से हृदय में उत्पन्न घृणित भावनाएँ शुद्ध होती हैं। क्षत्रियों के लिए तो अश्वमेधयज्ञ धार्मिक कार्य के साथ-साथ शौर्यता का भी प्रतीक है। अतः युधिष्ठिर एवं अर्जुन को करुणायुक्त वातावरण से निकालकर वीरतापूर्ण वातावरण में उपस्थित कराने हेतु भी अश्वमेधयज्ञ का चयन अत्यावश्यक था।

इन सबके अतिरिक्त, सर्वाधिक प्रभावपूर्ण घटना मृत परीक्षित का पुनर्जीवित होना है क्योंकि परीक्षित ही इस वंश के एकमात्र अवशिष्ट उत्तराधिकारी थे। अतः महाकवि द्वारा आश्वमेधिक पर्व में इस आशामयी घटना का समावेश महाभारत के कथाक्रम को आनन्द के चरमोत्कर्ष पर तथा अलौकिकता के सर्वोच्च शिखर पर ले जाता है।

यज्ञ-प्रकरण

यज्ञ शब्द **यज्** धातु से भाव अर्थ में **नङ्** प्रत्यय करने पर निष्पन्न होता है।⁷ यद्यपि नङ् प्रत्यय भाव अर्थ का बोधक है तथापि **धातवः अनेकार्था** के नियमानुसार यज्ञ शब्द अनेकार्थक भी होता है। धातुपाठ में यज् धातु के तीन अर्थ कहे गये हैं - देवपूजा, संगतिकरण और दान।⁸ शतपथ ब्राह्मण में यज्ञ को विष्णु, कर्म तथा पुरुष की संज्ञा दी गयी है।⁹

गौतम धर्मसूत्रकार ने सूत्र संख्या ८/१८ में प्रमुखरूपेण तीन प्रकार के यज्ञों (पाकयज्ञ, हविर्यज्ञ, सोमयज्ञ) का उल्लेख करते हुए उक्त तीन यज्ञों के सात अवान्तर भेद किए हैं। इस प्रकार यज्ञों की संख्या २१ हो जाती है जो निम्न क्रम से उल्लिखित है :-

औपासन, वैश्वदेव, पार्वण, अष्टिका, मासिक श्राद्ध, श्रवणा, शूलगव, अग्निहोत्र, दर्शपूर्णमास, आग्रयण, चातुर्मास्य, निरूढ पशुबन्ध, सौत्रामणी, पिण्ड पितृयज्ञ, अग्निष्टोम, उक्त्य, षोडशी, वाजपेय, अतिरात्र एवं आप्तोर्याम।

उपर्युक्त २१ प्रकार के यज्ञों में पंचमहायज्ञों को भी सम्मिलित करने पर संख्या २६ हो जाती है।

श्रीमद्भगवद्गीता के अनुसार प्रत्येक प्रकार का यज्ञ कर्ता के स्वभावानुसार तीन प्रकार का होता है :-

Corresponding Author:

Saurabh Kumar

PhD Research Scholar,

Department of Sanskrit,

University of Delhi, Delhi, India

9. शास्त्र विधि से किया हुआ यज्ञ तथा कर्तव्य प्रधान होना। इस प्रकार मन को स्थिर करके फल को न चाहने वाले मनुष्यों के द्वारा किया जाने वाला **सात्त्विक यज्ञ** कहलाता है।⁹⁰
2. दम्भाचरण अथवा फल प्राप्ति के लिए किया जाने वाला **राजस यज्ञ** कहा जाता है।⁹¹
3. शास्त्र विधि से हीन, अन्नदान से हीन, मन्त्र एवं दक्षिणा से रहित तथा श्रद्धा के बिना किये जाने वाले यज्ञ को **तामस यज्ञ** कहते हैं।⁹²

गीता में यज्ञ को मानव का सहजात कहा गया है।⁹³ उक्त उदाहरणों से स्पष्ट हो जाता है कि यज्ञ एक आदिकालीन व्यवस्था है जो मानव के कल्याणार्थ सृजित की गयी थी।

वेद, पुराणों, स्मृति ग्रन्थों एवं विभिन्न शास्त्रों में यज्ञ महिमा का मुक्त कण्ठ से गुणगान किया गया है। अथर्ववेद में यज्ञ को समस्त ब्रह्माण्ड को बाँधने वाला नाभि-स्थल कहा गया है।⁹⁴ यज्ञ विहीन मनुष्य को तेजहीन कहकर निन्दित किया गया है।⁹⁵ अग्निपुराण एवं मत्स्यपुराण एक स्वर से यज्ञ को देवताओं की प्राप्ति का साधन मानते हुए उसकी महत्ता को द्विगुणित कर देते हैं।⁹⁶ पद्मपुराण में भी यज्ञ द्वारा देवों तथा मानवों की वृद्धि का उल्लेख किया गया है।⁹⁷ आश्वलायन गृह्यसूत्र में यज्ञ को सन्तान, पशु, ब्रह्मतेज एवं अन्न का वर्धन करने वाला बताया गया है।⁹⁸

यज्ञीय देश

मनुस्मृति के अनुसार जिस क्षेत्र में कृष्णसार मृग स्वाभाविक रूप से विचरण करता हो उस स्थान को यज्ञीय देश समझना चाहिए, इसके अतिरिक्त अन्य स्थान को म्लेच्छ देश समझना चाहिए।⁹⁹ यहाँ उक्त लक्षण से यही अर्थ ध्वनित होता है कि जिस स्थान पर सुन्दर-सुन्दर पशु-पक्षी भी अभय होकर विहार करते हैं वहाँ के निवासी दयावानु अवश्य होंगे। अतः यज्ञ के कार्यों में ऐसे स्थल पर यज्ञीय पदार्थों की उपलब्धि भी सहज हो जाती है। म्लेच्छ देश से तात्पर्य उस देश से है जहाँ पशु-पक्षी निर्भय न रह सकें। अतः वहाँ सद्गुणों वाले मनुष्य ही नहीं होंगे, जिससे निश्चित ही ऐसे स्थल पर होने वाले यज्ञ में विघ्नों का आना स्वाभाविक ही है। याज्ञवल्क्य स्मृति में भी यज्ञीय देश की इसी प्रकार की पहचान बतायी है।¹⁰⁰

यज्ञ के अधिकारी

वर्ण-व्यवस्था के अन्तर्गत ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्य को यज्ञ का अधिकारी माना गया है। शूद्र को यज्ञीय कर्म का अधिकार का अधिकार प्राप्त नहीं था। प्रश्न किया जा सकता है कि शूद्र को मानव जाति का एक अंग होते हुए भी उसे यज्ञ में स्थान क्यों नहीं दिया गया? जिस प्रकार आधुनिक समय में जाति को जन्मानुसार माना जाता है, वैसा महाभारतकाल तक नहीं था। गीता में श्रीकृष्ण ने स्पष्ट कहा है कि चारों वर्णों को मैंने ही सृजित किया है और उनका विभाग गुण एवं कर्मों के अनुसार किया है।¹⁰¹ स्पष्ट हो जाता है कि तत्कालीन व्यवस्था में वर्ण गुण-कर्मानुसारी थे, जात्यानुसारी नहीं। यज्ञीय सन्दर्भ में इसे इस प्रकार समझा जा सकता है कि जब तक मानव का कर्म शूद्र सदृश रहेगा तब तक वह यज्ञ का अधिकारी नहीं हो सकता। शतपथ ब्राह्मण में उल्लेख किया गया है कि बसन्त ऋतु में ब्राह्मण, ग्रीष्म में क्षत्रिय एवं वर्षा ऋतु में वैश्य को यज्ञ कर्म करना चाहिए।¹⁰² आपस्तम्ब धर्मसूत्र में भी यही तथ्य स्वीकार किया गया है, मात्र वैश्य हेतु शरद ऋतु का उल्लेख कर दिया गया है।¹⁰³

यज्ञ के सदस्य

यज्ञीय कार्यों को सम्पन्न कराने हेतु जिन विद्वानों का वरण किया जाता है वे सदस्य कहलाते हैं। प्रमुख सदस्यों का इस प्रकार समझा जा सकता है :-

आचार्य : व्यास स्मृति के अनुसार जो ब्राह्मण अग्निहोत्री, तपस्वी, वेदादि का ज्ञाता एवं कल्पसूत्र तथा उपनिषदादि के रहस्य का ज्ञाता हो, वह आचार्य कहलाता है।¹⁰⁴

ब्रह्मा : यज्ञादि कर्म की अवधि पर्यन्त यजमान के अभिलाषित फल प्राप्ति में बाधाओं को नष्ट करने की कामना से गणपति का वरण किया जाता है।

गणपति : यज्ञ कर्म की अवधि पर्यन्त यजमान के अभिलाषित फल प्राप्ति में बाधाओं को नष्ट करने की कामना से गणपति का वरण किया जाता है।

उपद्रष्टा : जिस सदस्य का वरण यज्ञ मण्डप, यज्ञ सामग्री, ऋत्विज आदि के कार्यों के निरीक्षण हेतु तथा ब्रह्मा की सहायता हेतु किया जाता है, उसे उपद्रष्टा कहते हैं।

ऋत्विज् : 'ऋत्विज्' शब्द की व्याख्या विभिन्न ग्रन्थों में भिन्न-भिन्न प्रकार से की गयी है। ऐतरेय ब्राह्मण में ऋत् का अर्थ 'प्रतिष्ठा' है।¹⁰⁵ यह ऋत् शब्द संभवतः वेदों में ग्रहण किया गया है। ऋग्वेद में ऋत् को जगत् का प्रतिष्ठाकारक बताया है।¹⁰⁶ निरुक्तकार यास्क ने ऋत्विक् को स्तुति वाक्यों का कहने वाला, ऋचाओं द्वारा यज्ञ कराने वाला, ऋतु में यजन कराने वाला बताया है।¹⁰⁷ मनुस्मृतिकार ने अग्न्याधेय, पाकयज्ञ एवं अग्निष्टोमादि यज्ञों के कर्ता द्वारा वरण किए जाने वाले सदस्य को ऋत्विक् माना है।¹⁰⁸ याज्ञवल्क्य स्मृति में यज्ञकर्ता को ही ऋत्विक् माना गया है किन्तु वहाँ प्रयुक्त **यज्ञकृत्** शब्द यज्ञकर्ता एवं यज्ञ कराने वाले दोनों से ही सम्बन्धित हो सकता है।¹⁰⁹ महाभारत के आश्वमेधिक पर्व में ऋत्विजों की संख्या 96 निर्देशित की गयी है।¹¹⁰

यज्ञ के सम्पन्नकर्ता ऋत्विजों की संख्या के भी विषय में विद्वानों में मनभेद है। भट्ट नारायण ने अपने नाटक वेणीसंहार में चार ऋत्विजों का उल्लेख किया है जबकि यजुर्वेद में उक्त चार ऋत्विजों के अतिरिक्त **श्रुता** नामक ऋत्विज् का उल्लेख होने से इनकी संख्या पाँच हो जाती है।¹¹¹ अतः कहा जा सकता है कि ऋत्विजों की संख्या निश्चित न होकर आवश्यकतानुसार न्यूनाधिक रखी जा सकती है।

यज्ञान्त में दक्षिणा का विधान

यज्ञान्त में दक्षिणा देना श्रेयस्कर ही नहीं आवश्यक भी है। कात्यायन स्मृति में गाय एवं वस्त्रों के दान का उल्लेख किया गया है।¹¹² शातातप स्मृति में स्वर्ण निस्कौ (तत्कालीन मुद्रा) का दान देने का विधान बताया गया है।¹¹³ आचार्य यास्क ने दक्षिणा शब्द की **दक्ष्** (समृद्धि अर्थक) धातु से निष्पन्न माना है क्योंकि यह निर्धन को समृद्ध बनाती है द्वितीय अर्थ में इसे गायों के दक्षिण दिशा के गमन से जोड़ा है क्योंकि दक्षिणा में दी जाने वाली गायें यज्ञ वेदी के बायें भाग से दक्षिण भाग की ओर लाकर ही ऋत्विज् को दी जाती थीं। दक्षिण दिशा में दक्षिण शब्द की व्युत्पत्ति का कारण प्रजापति का दक्षिण हाथ है। प्रजापति का मुख पूर्व की ओर होता है अतः दक्षिण हाथ की ओर दक्षिण दिशा ही होगी। दक्षिण हाथ को यास्क ने **दक्ष्** (उत्साहवर्द्धक) से ही निष्पन्न माना है। सीधे हाथ से उत्साहपूर्वक कर्म किए जाने के कारण उसे दक्षिण हस्त कहा जाने लगा।¹¹⁴ आश्वमेधिक पर्व में भी उल्लेखित है कि युधिष्ठिर ने अश्वमेध यज्ञ की समाप्ति पर ब्राह्मणों को एक हजार करोड़ स्वर्णमुद्राओं का दान दिया था तथा व्यास के लिए पृथिवी दान में दी थी।¹¹⁵ किन्तु बाद में कृष्ण के उपदेशानुसार उस पृथिवी के मूल्य का तीन गुना मूल्य दे दिया गया था। इस प्रकार यह सिद्ध होता है कि तत्कालीन दक्षिणा दान में यह व्यवस्था थी कि यदि कोई वस्तु दक्षिणा ग्रहण करने वाले को स्वीकार नहीं होती थी तो उसे उस वस्तु का मूल्य देकर संतुष्ट कर दिया जाता था।

यज्ञीय साधन

यज्ञ के साधनों में सर्वप्रथम यज्ञभूमि अथवा यज्ञशाला की आवश्यकता होती है। आश्वमेधिक पर्व में यज्ञशाला का वर्णन प्राप्त होता है। युधिष्ठिर द्वारा सर्वप्रथम यज्ञभूमि की माप कराई गई थी।¹¹⁶ युधिष्ठिर की यज्ञभूमि स्वर्ण एवं मणियों से युक्त थी।¹¹⁷ यज्ञशाला के द्वार तथा खम्भे भी स्वर्ण निर्मित थे। अतः कहा जा सकता है कि यज्ञशाला का निर्माण यज्ञकर्ता द्वारा अपनी सम्पन्नता के आधार पर कराया जाता था।

यज्ञवेदी : महाभारतकाल में यज्ञवेदी का निर्माण ईंटों द्वारा होता था। ये ईंटें द्वारा होता था। ये ईंटें स्वर्णमयी होती थीं। आश्वमेधिक पर्व में यज्ञवेदी की त्रिकोण एवं गरुणाकार दो आकृतियाँ प्रस्तुत की गयी हैं। दोनों यज्ञ वेदियों की प्रत्येक भुजा की माप अठारह हाथ बताई गई है।¹¹⁸

यूप : यज्ञीय पशुओं को बाँधते हुए जिन खम्बों का निर्माण किया जाता था वे यूप कहलाते थे। आश्वमेधिक पर्व में स्पष्ट किया गया है कि युधिष्ठिर कृत अश्वमेध यज्ञ में ६ बेल, ६ खैर, ६ पलाश, २ देवदारु तथा १ श्लेष्मातक वृक्षों के कुल २१ यूपों का प्रयोग किया गया था।^{३६}

आश्वमेधिक पर्व में वर्णित यज्ञ

यद्यपि आश्वमेधिक पर्व का प्रमुख प्रतिपाद्य विषय अश्वमेध यज्ञ ही है। तथापि यह तर्क प्रस्तुत किया जा सकता है कि युधिष्ठिर ने आश्वमेधिक यज्ञ ही क्यों किया? क्या तत्कालीन समाज में अन्य यज्ञ प्रचलित नहीं थे?

आश्वमेधिक पर्व का प्रारम्भ युधिष्ठिर की व्यग्र मनोदशा से होता है।^{३७} वे स्वयं को पाप का भागी मान रहे थे। आश्वमेधिक पर्व में पाप-नाशक चार यज्ञों का नामोल्लेख किया गया है - राजसूय, अश्वमेध, सर्वमेध तथा नरमेध।^{३८}

उक्त चारों यज्ञों में से यद्यपि अश्वमेध को ही स्वीकार किया गया, इसी यज्ञ का वर्णन आश्वमेधिक पर्व का उद्देश्य भी है। तथापि अन्य यज्ञों का अध्ययन भी आवश्यक ही प्रतीत होता है क्योंकि अन्य यज्ञों के अध्ययनोपरान्त ही यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि इन यज्ञों के अतिरिक्त अश्वमेध यज्ञ को ही प्राथमिकता क्यों दी गयी?

नरमेध यज्ञ

शाब्दिक अर्थ के आधार पर नरमेध यज्ञ को 'मनुष्य बलि' से सम्बन्धित किया जाता है किन्तु 'क्या वास्तविक रूप में ऐसा था ?' इस प्रश्न पर गम्भीरता पूर्वक एवं विवेचनात्मक विचार करना चाहिए।

पुरुषमेध का स्पष्ट अर्थ समझने के लिए ऋग्वेदोक्त पुरुषसूक्त के सन्दर्भ में देखना चाहिए। वहाँ स्पष्ट कहा गया है कि सहस्रों सिर, सहस्रों नेत्र, सहस्रों चरण वाला यह परमपुरुष पंच भूतों को व्याप्त करता हुआ दश अंगुल के बराबर प्रदेश को अतिक्रमण कर स्थित हुए है। यह वर्तमान विश्व, गत विश्व और भावी विश्व यह सब परमपुरुष रूप ही है। ब्राह्मण इसका मुख, क्षत्रिय बाहू, वैश्य जंघा और शूद्र चरण रूप हुए। उक्त प्रकार देव शरीर की प्राप्ति कर देवताओं ने पुरुष रूप को मानस हवि मानकर उसके द्वारा मानस यज्ञ को विस्तृत किया। उस समय वसन्त ऋतु घृत, ग्रीष्म समिधा और शरद् ऋतु हवि हुई। जब देवताओं ने मानस यज्ञ को विस्तृत करते हुए इस विराट् पुरुष में पशुपुरुष की भावना कर बाँधा तब इस यज्ञ की सात परिधियाँ हुईं और २१ छन्द इसकी समिधाएँ बनीं।^{३९}

उक्त सूक्त में जो पुरुष का जो स्वरूप अंकित किया गया है उससे पुरुषमेध का रहस्य सुलझाया जा सकता है। विश्व में सर्वत्र पुरुष मात्र ही व्याप्त है। पुरुष का अमृतत्व स्वयं सिद्ध ही है क्योंकि लौकिक मृत्यु से पूर्व मनुष्य अपने उत्तराधिकारी को उत्पन्न कर चुका होता है। अतः पुरुष मृत न होकर अमर ही रहता है।

'मेध' शब्द का अर्थ 'बलिदान' ग्रहण करने पर भी इसका तात्पर्य मनुष्य को काट कर किसी इष्ट पर चढ़ाने से नहीं जोड़ा जा सकता। मनुष्य किसी न किसी रूप में स्वयं का बलिदान करता ही रहता है। पुरुषसूक्तोक्त 'परमपुरुष' के मुख से ब्राह्मण, बाहू से क्षत्रिय आदि का होना यह इंगित नहीं करता कि तत्तत् अंगों का विच्छेदन किया गया अपितु यह सांकेतिक अर्थ ही अधिक ग्राह्य होगा कि उक्त अंग विशेषों से मनुष्य को कार्य विभाजन का ज्ञान हुआ। जो व्यक्ति ज्ञान-प्रधान थे उन्हें ब्राह्मण; जो व्यक्ति रक्षा करने में निपुण एवं शक्तिशाली थे उन्हें क्षत्रिय; जो व्यक्ति आय-व्यय को सुचारु रूप से व्यवस्थित कर सकते थे उन्हें वैश्य; जो व्यक्ति सम्पूर्ण समाज की सेवा, परिचर्या का कार्य कर सकते थे उन्हें शूद्र की संज्ञा दी गयी।

अतः नरमेध से यही तात्पर्य ध्वनित होता है कि तत्कालीन समाज में जो राजा इतना शक्तिशाली हो जाता था कि वह सम्पूर्ण राज्य के मनुष्यों को उनके गुण एवं कर्मों के अनुसार वर्णों में विभाजित कर सके उसे नरमेध यज्ञ हेतु योग्य माना जाता था। यदि 'नरमेध' शब्द को सम्पूर्ण समाज से न जोड़कर व्यक्ति विशेष से ही जोड़ा जाए तो भी ध्वनित होता है कि मनुष्य अपने शरीर के विभिन्न अंगों को उनके योग्य कर्मों में लगाता हुआ स्वयं की एवं समाज की व्यवस्था को सुचारु रूप से चलाता रहे।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि वैदिक ग्रन्थों में मानव शरीर के अंगों द्वारा सेवाकार्य रूपी बलिदान अथवा समाज में विभाजित वर्णों के रूप में सामाजिक सेवा रूपी बलिदान की प्रक्रिया ही **पुरुषमेध** कहलायी।

खेद का विषय है कि परवर्ती समाज ने इसे हिंसा का रूप प्रदान किया। आधुनिक युग में भी अनेकों समुदायों में मनुष्य बलि का यह हिंसक स्वरूप देखने और सुनने में आता है। शास्त्रोक्त तथ्यों की मीमांसा विवेकाधीन होती है। जो शास्त्रार्थ मानव हित सम्पादनार्थ होते हैं वे ऐसे कुकृत्य का आवेश नहीं दे सकते, यह सोचकर उनका गूढार्थ समझना अधिक उपयुक्त है न कि शब्दार्थ। अतः युधिष्ठिर को पुरुषमेध अथवा नरमेध की आज्ञा देने का यही तात्पर्य था कि महाभारत युद्धोपरान्त जो सामाजिक अव्यवस्था समाज में व्याप्त हो गयी थी। यथा - द्रोण, अश्वत्थामा, भारद्वाज जैसे ब्राह्मण भी अपना वर्णाश्रित कर्म छोड़कर क्षत्रियों जैसे आचरण करने लगे थे, इसी प्रकार कर्ण अपना सूतकार कर्म छोड़कर युद्ध हेतु प्रस्तुत हुआ था। समाज के अनेक व्यक्ति अपने स्वाभाविक कर्मों को त्यागकर युद्ध में प्रवृत्त हो चुके थे। यहाँ तक कि युधिष्ठिर भी जो कि क्षत्रिय थे, जिनका स्वाभाविक कर्म युद्ध करना था, युद्ध से पराङ्मुख हो चुके थे। कहने का तात्पर्य यही है कि सामाजिक वर्ण-व्यवस्था छिन्न-भिन्न हो चुकी थी। ऐसी स्थिति में वेद व्यास का कर्तव्य था कि उस अस्त-व्यस्त व्यवस्था को व्यवस्थित करने हेतु राजा को उपदेशित करे।

सर्वमेध यज्ञ

शतपथ ब्राह्मण के त्रयोदश काण्डान्तर्गत सप्तम अध्याय में सर्वमेध का वर्णन मिलता है। उक्त प्रसंग में प्रारम्भ में ही सर्वमेध का शाब्दिक एवं गूढार्थ प्रस्तुत कर दिया है, यथा - स्वयम्भू ब्रह्मा ने तप किया। उन्होंने कहा कि तप में आनन्द नहीं है। मैं भूतों में अपनी आत्मा की आहुति दे दूँ और अपनी आत्मा में भूतों की। इससे सब भूतों में श्रेष्ठता, स्वराज्य आधिपत्य की प्राप्ति होती है।^{४०}

उक्त अंश में 'भूतों में आत्मा की आहुति' एवं 'आत्मा में भूतों की आहुति' ये दो वाक्यांश ही सर्वमेध यज्ञ के मूल हैं। 'सर्वस्व का त्याग करना' ही सर्वमेध का शाब्दिक अर्थ है। इसे प्रतीकात्मक भाषा में समझाने के लिए शतपथ ब्राह्मण में इस प्रकार कहा गया है :-

स्थूल रूप में इसे **दशरात्र यज्ञ** माना है।^{४१} इसका विधान इस प्रकार वर्णित है - प्रथम दिन **अग्निष्टुत अग्निष्टोम** होता है; द्वितीय दिन **इन्द्रस्तुत उक्थ्य** होता है; तृतीय दिन **सूर्यस्तुत उक्थ्य** होता है; चतुर्थ दिन **वैश्वदेव** होता है; पंचम दिन **आश्वमेधिक यज्ञ** होता है; षष्ठ दिन **पुरुषमेध यज्ञ** होता है; सप्तम दिन **आप्तोर्याम** होता है; अष्टम दिन **त्रिणव** होता है; नवम दिन ३३ स्तोत्रों की **इष्टि** होती है; दशम दिन **अतिरात्र** होता है।^{४२}

युधिष्ठिर को उक्त यज्ञ का उचित याजक मानकर ही व्यास ने उन्हें उपदेश दिया था। युधिष्ठिर के लिए निर्देशित सर्वमेध यज्ञ में बाह्य वस्तुओं के त्याग के विषय में ही नहीं कहा गया अपितु आन्तरिक भावनाओं में व्याप्त दुःख, शोक के त्याग का भी उपदेश दिया गया है। अतः कहा जा सकता है कि आश्वमेधिक पर्व में उल्लिखित **सर्वमेध यज्ञ** अपने स्थूल एवं सूक्ष्म उभय रूपों का प्रतिनिधित्व करता है।

राजसूय यज्ञ

यह एक दीर्घ अवधि (लगभग दो वर्ष) तक चलने वाला यज्ञ है। यह राजाओं से सम्बन्धित यज्ञ है। कात्यायन स्मृति जहाँ यह स्पष्ट करती है कि राजसूय यज्ञ वह राजा ही कर सकता है जिसने वाजपेय यज्ञ न किया हो।^{४३} वहाँ आश्वलायन श्रौतसूत्र कहता है कि वाजपेय यज्ञ का कर्ता ही राजसूय यज्ञ कर सकता है।^{४४} शतपथ ब्राह्मण में राजसूय एवं वाजपेय का अन्तर स्पष्ट किया गया है कि राजसूय यज्ञ करने से क्षत्रिय राजा कहलाता है। जबकि वाजपेय यज्ञ करने के बाद उसकी स्थिति सम्राट् की हो जाती है।^{४५}

अश्वमेध यज्ञ

व्यास द्वारा उपदेशित चतुर्यज्ञों में यह ही एकमात्र ऐसा यज्ञ है जिससे युधिष्ठिर प्रभावित हुए। युधिष्ठिर ने इसी यज्ञ का चयन क्यों किया?

असंशयं वाजिमेषः पावयेत् पृथिवीमपि।^{४६}

इस यज्ञ का चयन पापशुद्धि के हेतु किया गया था क्योंकि यह तथ्य सर्वविदित है कि महाभारत के युद्ध में युधिष्ठिर के मिथ्या वचन (अश्वत्थामा हतो, नरो वा कुन्जरो वा) के परिणामस्वरूप ही गुरु द्रोण ने शस्त्रत्याग किया था।

शस्त्रहीन अवस्था में उनका वध किया गया था। अतः गुरुहत्या व ब्राह्मणहत्या का मूल अपराध युधिष्ठिर का था। इसका प्रायश्चित्त होना अत्यावश्यक था जिसे धर्मग्रन्थों में अश्वमेध यज्ञ के रूप में कहा गया है।^{५०}

शतपथ ब्राह्मण में अश्वमेध विधि को निम्न प्रकार वर्णित किया गया है:-

सर्वप्रथम **ब्रह्मीदन पाक** कृत्य होता है।^{५१} तत्पश्चात् अश्व चयन किया जाता है। अश्व के वर्ण एवं आकृति के विषय में **माल्लवेय** के अनुसार घोड़ा प्रजापति की आँख से उत्पन्न हुआ था। आँख में दो रंग होते हैं कृष्ण एवं श्वेत। अतः घोड़े का रंग भी कृष्ण-श्वेत मिश्रित होना चाहिए।^{५२} सात्ययज्ञी के अनुसार, अश्व तीन रंग का होना चाहिए - अगला आधा भाग काला, पिछला आधा भाग श्वेत तथा मस्तक पर गाड़ी का चिह्न।^{५३} रंग के विषय में मतभेद होते हुए भी इस बात पर मतैक्य ही है कि अश्व युवा एवं गतिमान होना चाहिए।^{५४} संभवतः आयु एवं गति को महत्त्व इसलिए दिया गया है क्योंकि उस अश्व को सम्पूर्ण राष्ट्र में भ्रमण करना है। अश्वमोचन में सर्वप्रथम अश्व की रस्सी ग्रहण करने हेतु इमामगृष्णन्शनामृतस्य.....^{५५} इस मन्त्र का उच्चारण किया जाता है। अश्व की ग्रीवा में रस्सी डालते समय अभिधासि भुवनमसि यन्तासि धर्ता.....^{५६} यह मन्त्र पढ़ा जाता है। चारों पुरोहितों द्वारा अश्व पर जल छिड़का जाता है। एतदर्थ यजुर्वेद के प्रजापतयेत्वा जुष्टं प्रेक्षामि.....^{५७} इस मन्त्र का उच्चारण किया जाता है। तत्पश्चात् चार आँख वाले एक कुत्ते को मारकर उसे घोड़े के पैर के नीचे बांधकर जल में बहाया जाता है।^{५८} चार आँख वाले कुत्ते से तात्पर्य है कि ऐसा कुत्ता जिसकी प्राकृतिक दोनों आँखों के पास दो गड्ढे बने हों। सम्भवतः यह कृत्य शत्रु को पैरों तले कुचलने के प्रतीक के रूप में किया जाता होगा।

स्नान कराए गये अश्व के शरीर से जब तक जल की बूँदें टपकती रहती हैं तब तक यजुर्वेद में निर्दिष्ट^{५९} दस देवताओं हेतु क्रम से आहुति दी जाती रहती है। एक बार क्रम पूरा होने पर पुनः उसी क्रम से आहुति देते रहते हैं जब तक कि घोड़े के शरीर का जल टपकना बन्द हो जाए। उसके बाद अश्व के कान में विभ्रमात्रा प्रभूः पित्रा। अश्वोऽसिहयोऽसि.....^{६०} का जप किया जाता है।

अश्व को छोड़ते समय इसके रक्षकों को भी साथ भेजा जाता है। एक राजपुत्र, कवचधारी, सौ क्षत्रिय तलवार लिए हुए, सौ ग्रामीण तरकसों सहित, सौ क्षत्रिय पुत्र यष्टि लिए हुए, सौ २४ वर्षीय घोड़े उस यज्ञीय अश्व के साथ भेजे जाते हैं।^{६१} युधिष्ठिर ने भी अपने अश्वमेध यज्ञ में अश्व के पीछे अर्जुन एवं अन्य रक्षक भेजे थे।^{६२} जब तक यज्ञीय अश्व राष्ट्र में घूमता रहता है तब तक यजमान प्रतिदिन प्रातः, मध्याह्न एवं सांय सविता के लिए तीन इष्टियां करता है और राजा का कार्य अध्वर्यु संभालता है।

दश दिन तक एक अद्भुत संवादात्मक कृत्य भी चलता है जिसमें प्रथम दिन ऋग्वेद की ऋचा के माध्यम से गृहस्थों को संकेत करता हुआ मनु सम्बन्धी गाथा का मान होता है। द्वितीय दिन वृद्धों को संकेत कर यम सम्बन्धी यजुर्वेद के अनुवाक का पाठ होता है। तृतीय दिन सुन्दर युवकों को संकेत कर वरुण और गन्धर्व से सम्बन्धित अथर्ववेद के एक पर्व के पाठ किया जाता है। चतुर्थ दिन सुन्दरी नारियों को संकेत कर सोम विष्णु अप्सराओं से सम्बन्धित आंगिरस के एक पर्व का पाठ होता है। पंचम दिन सर्पविद्या के पर्व का पाठ, षष्ठ दिन अधर्मी पापियों को संकेत कर देवजन विद्या के एक पर्व का पाठ, सप्तम दिन माया का प्रदर्शन कुसीदों के समक्ष, अष्टम दिन मछुआरों को संकेत कर इतिहास गाथा, नवम दिन पक्षी एवं पक्षीविशारदों के समक्ष पुराणों का पाठ तथा दशम दिन धर्म और इन्द्र को सम्बोधित कर दक्षिणा न लेने वालों को संकेत कर सामवेद के दस मन्त्र पढ़े जाते हैं।^{६३}

उक्त दस दिन के कृत्य को पारिलव गाथा के नाम से भी जाना जाता है। अश्व द्वारा परिभ्रमण के समय यदि अश्व की मृत्यु हो जाती है तब तो उस यज्ञ की विशुद्धि का विधान है।^{६४} परन्तु यदि मार्ग में शत्रुओं द्वारा उसका हरण कर लिया जाता है तो यज्ञ नष्ट माना जाता है।^{६५} लगभग एक वर्ष बाद अश्व लौट आता है तब उसे अश्व-शाला में बांधकर यजमान को दीक्षित किया जाता है।^{६६}

इस प्रकार कहा जा सकता है कि युधिष्ठिर का अश्वमेध यज्ञ वैदिक मान्यताओं पर आधारित होते हुए भी तात्कालिक सामाजिक परिवेश से सामंजस्य स्थापित किए हुए था।

अन्तःकरणीय यज्ञ

आश्वमेधिक पर्व के **ब्राह्मणगीता** नामक प्रकरण के अन्तर्गत एक ब्राह्मण द्वारा उसकी पत्नी को दिए गये उपदेशस्वरूप अन्तःकरणीय यज्ञों का विवेचन इस प्रकार है :-

ज्ञानयज्ञ : ब्राह्मण अपनी पत्नी से कहते हैं कि बाह्य यज्ञों में तो विभिन्न प्रकार की बाधाओं का भय बना ही रहता है। इसलिए मैं ज्ञानयज्ञ करता हूँ। यह ज्ञानयज्ञ आत्मा में स्थित ब्रह्म को आत्मा के द्वारा देखना ही है।^{६७}

दशहोतृविधान यज्ञ : दस इन्द्रियरूपी 'होता' दस देवतारूपी अग्नि में दस विषयरूपी हविष्य तथा समिधाओं का हवन करते हैं। इस प्रकार अन्तःकरणरूपी यह यज्ञ निरन्तर चलने से अकर्मण्यता नहीं रहती है।^{६८}

चित्तं सुवश्च वित्तं च पवित्रं ज्ञानमुत्तमम्।^{६९}

इस यज्ञ में चित्त ही सुवा तथा पवित्र एवं उत्तम ज्ञान ही धन है।

सप्तहोतृविधान यज्ञ: ज्ञानेन्द्रिय, मन एवं बुद्धि ये सात इन्द्रियाँ 'होता' हैं। ये सूक्ष्म शरीर में निवास करती हुई भी एक दूसरे के गुणों से अनभिज्ञ हैं। अतः इन्हें स्वभाव से ही जानना चाहिए।^{७०}

पंचहोतृविधान यज्ञ : इसमें पाँच वायु ही 'होता' हैं जिनकी परस्पर सापेक्षता सिद्ध है। किसी एक के क्रियाहीन हो जाने पर सभी क्रियाहीन हो जाते हैं। अतः पाँच प्राणों को एक ही जानकर भावनात्मक आसक्ति का त्याग करते हुए हृदय प्रदेश में यज्ञ करना चाहिए।^{७१}

चातुर्होम यज्ञ : इसमें मुख्यतया कर्ता, कर्म, करण और मोक्ष ये चार 'होता' कहे गये हैं। जब घ्रातादि सप्तकर्ता, नासिकादि सप्तकरणों को, गन्धादि सप्तकर्मों से मुक्त रखते हैं तो यज्ञकर्ता मोक्षरूपी यज्ञ के फल को प्राप्त कर लेता है।^{७२}

महर्षि अगस्त्य के द्वारा कथित मानसिक यज्ञ तथा स्पर्शयज्ञ का उल्लेख भी मिलता है:-^{७३}

चिन्तनमात्र से किये जाने वाले यज्ञ को **मानसिक यज्ञ** कहते हैं। संचित अन्न का व्यय किये बिना ही उसके स्पर्शमात्र से देवताओं को तृप्त करने की जो भावना है, उसका नाम **स्पर्शयज्ञ** है।

इन सबके अतिरिक्त वैष्णवधर्म पर्व में पंचमहायज्ञों का भी वर्णन मिलता है जो इस प्रकार है :-

तर्पण को **ऋधुयज्ञ** कहते हैं। स्वाध्याय को **ब्रह्मयज्ञ** कहते हैं। समस्त प्राणियों के लिए अन्न की बलि देना **भूतयज्ञ** है। अतिथियों की पूजा को **मनुष्ययज्ञ** कहते हैं। पितरों के उद्देश्य से जो श्राद्धादि कर्म किए जाते हैं, उन्हें **पितृयज्ञ** की संज्ञा दी गयी है।^{७४}

कतिचित् विद्वान् हुत, अहुत, प्रहुत, प्राशित और बलिदान नामक पाकयज्ञ को भी पंचमहायज्ञ की श्रेणी में गिनते हैं। वैश्वदेवादि कर्मों में जो देवताओं के निमित्त यज्ञ किया जाता है, उसे **हुत** कहते हैं। दान दी गई वस्तु को **अहुत** कहते हैं। ब्राह्मणों को भोजन कराना **प्रहुत** है। प्राणाग्निहोत्र की विधि से प्राणों को पाँच ग्रास अर्पित किए जाते हैं, उनकी **प्राशित** नामक संज्ञा है। गौ आदि प्राणियों की तृप्ति हेतु जो अन्न की बलि दी जाती है उसे **बलिवान** कहते हैं। इन पाँच कर्मों को **पाकयज्ञ** कहा जाता है।^{७५}

उपसंहार

ज्ञफलैस्तुल्यं न किंचिदिह दृश्यते।^{७६}

यज्ञफल की समानता करने वाला कोई भी कर्म इस संसार में नहीं है। यज्ञों का अनुष्ठान करके बहुत से राजा और श्रेष्ठ ब्राह्मण इहलोक में उत्तम कीर्ति पाकर मृत्यु के पश्चात् स्वर्गलोक को गये हैं।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि आश्वमेधिक पर्व में जहाँ राजसूय, अश्वमेध, सर्वमेध तथा नरमेध का उल्लेख किया गया है वहीं उनमें उपस्थित विघ्नों को ध्यान में रखते हुए आन्तरिक यज्ञ का भी उपदेश दिया गया है। इस आन्तरिक यज्ञ हेतु बाह्य उपकरणों की आवश्यकता नहीं होती, वर्ण-व्यसस्था इसकी

नियामक नहीं बन पाती, शारीरिक अवस्थाएँ भी इसमें प्रमुख कर्ता नहीं होती। इस यज्ञ को निर्धन, अस्वस्थ, शूद्रादि जोकि बाह्य यज्ञ (वैदिक यज्ञ) नहीं कर सकते; वे भी कर सकते हैं। अतः अन्तःकरणीय यज्ञ का विधान प्रस्तुत कर व्यास जी ने समस्त मानव जाति के कल्याण हेतु मार्ग प्रशस्त कर दिया है।

सन्दर्भ सूची

1. ततोऽश्वमेधिकं पर्व सर्वपापप्रणाशनम्। (महाभारत - आदिपर्व.२.७६)
2. अनुगीता ततः पर्व ज्ञेयमध्यात्मवाचकम्।। (महाभारत - आदिपर्व.२.७६)
3. श्रीमद्भगवद्गीता - २.५
4. महाभारत - आश्वमेधिकपर्व.१.३
5. महाभारत - आश्वमेधिकपर्व.२.१५-२०
6. महाभारत - आश्वमेधिकपर्व.३.५
7. यज्ञ-याच्-यत्-विच्छ-पृच्छ-रक्षो नड (अष्टाध्यायी ३/३/६०)
8. यज्ञ देवपूजासंगतिकरणदानेषु (धातुपाठ)
9. यज्ञो वै विष्णुः। यज्ञो वै कर्मः। पुरुषो वै यज्ञः। (शतपथ ब्राह्मण - १.१.१.१-३)
10. श्रीमद्भगवद्गीता - १७/११
11. श्रीमद्भगवद्गीता - १७/१२
12. श्रीमद्भगवद्गीता - १७/१३
13. सहयज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा.....।। (श्रीमद्भगवद्गीता - १७/११)
14. यज्ञो विश्वस्य भुवनस्य नाभिः। (अथर्ववेद - ६.१०.१४)
15. अयज्ञियो हतवर्चा भवति। (अथर्ववेद - १२.२.३७)
16. अग्निपुराण - ३८०.१ तथा मत्स्यपुराण - १४३.३३
17. पद्मपुराण - सृष्टिखण्ड.३.१२४
18. आश्वलायन गृह्यसूत्र - १.१०.१२
19. मनुस्मृति - २.२३
20. याज्ञवल्क्य स्मृति - आचाराध्याय.२
21. चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः। (श्रीमद्भगवद्गीता - ४/१३)
22. बसन्ते ब्राह्मणोऽनीनादधीत; ग्रीष्मे राजन्यो; वर्षासु वैश्यः। (शतपथ ब्राह्मण - २.१.३.५)
23. बसन्ते ब्राह्मणमुपनयीत; ग्रीष्मे राजन्यम्; शरदि वैश्यम्। (आपस्तम्ब धर्मसूत्र - १.१.१.१६)
24. व्यास स्मृति - ४.४३
25. ऋत्विजि हि सर्वो यज्ञः प्रतिष्ठितः। (ऐतरेय ब्राह्मण - ६.८)
26. ऋतं च सत्यं चाभीद्धात् तपसोऽध्यजायत। (ऋग्वेद - १०.१६०.१०)
27. ऋत्विक् कस्मात्? ईरणः। ऋग्यष्टा भवति इति शाकपूणिः। ऋतुयाजी भवतीति वा।। (निरुक्त - ३.४.२)
28. मनुस्मृति - २.१४३
29. याज्ञवल्क्य स्मृति - आचाराध्याय.३५
30. महाभारत - आश्वमेधिकपर्व.८६.६
31. अध्वर्युर्ब्रह्मोद्गातृहोतृक्षतारः कुमारी पत्नीभिः संवदन्ते.....। (यजुर्वेद - २३.२२ पर महीधर की टिप्पणी)
32. कात्यायन स्मृति - ८.१०
33. शातातप स्मृति - २.३३,३४
34. निरुक्त - १.३.७
35. महाभारत - आश्वमेधिकपर्व.८६.८
36. महाभारत - आश्वमेधिकपर्व.८६.१२
37. महाभारत - आश्वमेधिकपर्व.८६.१३
38. महाभारत - आश्वमेधिकपर्व.८८.३१,३२
39. महाभारत - आश्वमेधिकपर्व.८८.२७,२८
40. महाभारत - आश्वमेधिकपर्व.१.३
41. महाभारत - आश्वमेधिकपर्व.३.८
42. ऋग्वेद - १०.८०.१
43. शतपथ ब्राह्मण - १३.७.१.१
44. शतपथ ब्राह्मण - १३.७.१.२
45. शतपथ ब्राह्मण - १३.७.३-१२
46. कात्यायन स्मृति - १५.३.२
47. आश्वलायन श्रौतसूत्र - ६.६.१६
48. शतपथ ब्राह्मण - १६.३.४.८
49. महाभारत - आश्वमेधिकपर्व.३.११
50. मनुस्मृति - ११/८२
51. शतपथ ब्राह्मण - ३.१.१.१
52. शतपथ ब्राह्मण - १३.४.२.३
53. शतपथ ब्राह्मण - १३.४.२.४
54. शतपथ ब्राह्मण - १३.४.२.१
55. यजुर्वेद - २२.२
56. यजुर्वेद - २२.३
57. यजुर्वेद - २२.५
58. शतपथ ब्राह्मण - १३.१.२.६
59. यजुर्वेद - २२.६
60. यजुर्वेद - २२.१६
61. शतपथ ब्राह्मण - १३.४.२.५
62. महाभारत - आश्वमेधिकपर्व.७६.१७
63. शतपथ ब्राह्मण - १३.४.३.सम्पूर्ण
64. आपस्तम्ब गृह्यसूत्र - २२.७.६-२०
65. तैत्तिरीय ब्राह्मण - ३.८.६ तथा शतपथ ब्राह्मण - १३.१.६.६
66. शतपथ ब्राह्मण - १३.४.४.१
67. महाभारत - आश्वमेधिकपर्व.२०.६
68. महाभारत - आश्वमेधिकपर्व.२१.५
69. महाभारत - आश्वमेधिकपर्व.२१.६
70. महाभारत - आश्वमेधिकपर्व.२२.५
71. महाभारत - आश्वमेधिकपर्व.२३
72. महाभारत - आश्वमेधिकपर्व.२५
73. महाभारत - आश्वमेधिकपर्व.६२.१७,१८
74. महाभारत - आश्वमेधिकपर्व/वैष्णवधर्मपर्व.६.४
75. महाभारत - आश्वमेधिकपर्व/वैष्णवधर्मपर्व.६.५
76. महाभारत - आश्वमेधिकपर्व.६१.२